P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-7* March- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

जलवायु परिवर्तन : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

हरिशंकर गुप्ता
सहायक आचार्य,
भूगोल विभाग,
बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय,
अलवर, राजस्थान

सारांश

बढ़ती आबादी और इसके साथ तकनीकी और विकास को आधार बनाकर जीवन का उच्च स्तर प्राप्त करने की चाह ने विश्व स्तर पर पर्यावरण को प्रभावित किया है। पिछले कुछ दशकों में तेजी से बढ़ते औद्योगीकरण, प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुन्ध दोहन और पर्यावरण के लिए खतरा पैदा करने वाले घातक पदार्थो के निरन्तर बढ़ते उपयोग ने सम्पूर्ण वातावरण और उसमें व्याप्त जीवन के समस्त रूपों के अस्तित्व को चुनौती दी है। करोड़ों वर्षो में उत्पन्न एवं विकसित जीवन के लिए आज भयानक खतरा उत्पन्न हो गया है।

जीवन की उत्पत्ति तो करोड़ों वर्ष पूर्व संयोगवश सम्भव हुई, तब से लेकर आज तक अनेक जीवों का विकास भी हो गया है। यह सिलसिला आज भी जारी है। लेकिन कई जीव पृथ्वी से धीरे–धीरे विलुप्त भी हो रहे हैं जैसे कस्तूरी मृग, बारहसिंगा, घड़ियाल आदि। जीव–जन्तुओं के आवास में प्रतिकूल परिवर्तन, जीवों को पलायन करने के लिए बाध्य करते हैं। कई बार आवासीय स्थितियाँ अचानक विषम हो जाने पर वहाँ की जीव प्रजातियाँ समाप्त हो जाती हैं। जैसे प्राकृतिक कारणों के साथ–साथ नगरीकरण, वन–विनाश, बाँध–निर्माण, औद्योगीकरण, खनिज विधियाँ भी पर्यावरणीय प्रतिकूलता के लिए जिम्मेदार है।

जैव विनाश की प्राकृतिक प्रक्रिया को मानवीय गतिविधियों ने कई गुना बढ़ा दिया है। प्राकृतिक संसाधनों के अविवेकपूर्ण, अनियोजित दोहन से जीव–जन्तुओं और वनस्पतियों के अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न लगा दिया है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि यदि प्रकृति में इसी गति से मानवीय हस्तक्षेप होता रहा, तो सन् 2050 तक लगभग 1 करोड़ जीव प्रजातियाँ विलुप्त हो जाएंगी। विकास के नाम पर पर्यावरण का भारी नुकसान होता है। शहरों का विस्तार सड़क निर्माण या सिंचाई और ऊर्जा के लिए बाँध निर्माण तथा औद्योगीकरण इन सबका खामियाजा तो मूक प्राणियों और वनस्पतियों को ही चुकाना पड़ता है। मानव की शिकारी प्रवृति ने जीवों के विलुप्तीकरण की दर में वृद्धि की है क्षणिक सुख और कुछ धन के लालच में इन जीवों की हत्या करना बेहद चिंता का विषय है। शिकार के ही परिणामस्वरूप मॉरीशस का स्थानिक पक्षी डोडो दुनिया से सदा के लिए विलुप्त हो गया। और अनेक जीव संकटग्रस्त प्रजातियों की श्रेणी में आ गए।

मुख्य शब्द : जलवायु, आबादी, प्राकृतिक संसाधन तकनीक, विकास, औद्योगिकीकरण, ग्रीन हाउस प्रभाव, परिवर्तन, पारिस्थितिकी तंत्र, तापमान।

प्रस्तावना

जलवायु परिवर्तन निःसन्देह हमारे जीवन के अस्तित्व और विकास से जुड़ी एक गम्भीर वैश्विक समस्या बन चुकी है जिसके परिणामस्वरूप सम्पूर्ण विश्व में बड़े पैमाने पर उथल–पुथल अवश्यम्भावी है। जलवायु परिवर्तन के कारण दुनिया के द्वीपों का अस्तित्व तो संकटग्रस्त हो ही रहा है यह मानव जीवन पर विपरीत प्रभाव के साथ प्राकृतिक आपदाओं जैसे बाढ़, सूखा, तूफान तथा चक्रवात आदि की आवृत्ति भी बढ़ा रहा है जलवायु परिवर्तन से एक तरफ जहाँ फसलों की उत्पादकता में कमी एवं उनके चक्रण स्वरूप में परिवर्तन से किसानों की आर्थिक दशा में गिरावट अवश्यम्भावी है, वहीं विकास की लागतें बढ़ने से भावी गुणवत्ता भी कमजोर होगी। ऐसे में जलवायु परिवर्तन के वैश्विक दुष्प्रभावों को देखते हुए समय की सबसे बड़ी आवश्यकता इससे निपटने के लिए एक नियोजित एवं दीर्घकालिक रणनीति पर काम करने की है क्योंकि विकास की अनियोजित प्रक्रिया से पर्यावरणीय संकट बढ़ रहा है। पृथ्वी की जीवन–शक्ति और अनुकूलन क्षमता घट रही है। प्राकृतिक साधनों के अंधाधुन्ध दोहन के कारण कई प्रकृतिजन्य संकट हमारे समक्ष खड़े हो रहे हैं। ओजोन

परत में छेद हो जाने के कारण इसकी सूर्य की पराबैंगनी किरणों को रोकने की क्षमता घट रही है, कुल मिलाकर प्रकृति के निर्मम संहार के चलते उत्पन्न जलवायु परिवर्तन आज विश्व के समक्ष ज्वलन्त एवं चुनौती बन गई है।

अध्ययन का उद्देश्य

1. लोगों को जयवायु परिवर्तन के बारे में जागरूक करना।
2. ईंधन की खपत को कम करने के लिए प्रयास करने हेतु जागरूकता पैदा करना।
3. जलवायु संरक्षण हेतु सरकारों द्वारा किये जा रहे प्रयासों का अध्ययन करना।
4. औद्योगिकीकरण से पर्यावरण को होने वाले नुकसानों का अध्ययन करना।
5. पर्यावरण प्रदूषण एवं वनों की कटाई के दुष्परिणामों की जांच करना।
6. जलवायु परिवर्तन से जैव विविधता पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करना।
7. बढ़ती जनसंख्या के पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करना।
8. ग्रीन हाउस प्रभाव तथा इसके कारकों का अध्ययन करना।
9. पारिस्थितिकी तंत्र के बदलते आयामों पर प्रकाश डालना।
10. वायुमण्डल में स्थित ओजोन परत तथा उसमें बने छिद्र का अध्ययन करना।

शोध पद्धति

प्रस्तुत शोध में शोधकर्त्ता द्वारा शोध सामग्री एकत्रित करने हेतु प्राथमिक तथा द्वितीयक आंकड़े विधि को अपनाया गया है। क्योंकि प्रस्तुत शोध विषय सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों प्रकार के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है। प्राथमिक आंकड़ों के अन्तर्गत शोधकर्त्ता द्वारा विषय के विद्वान लोगों, पत्रकारों, सामाजिक कार्यकर्त्ताओं तथा पर्यावरणविदों से प्रश्नावली, साक्षात्कार एवं अनुसूची के माध्यम से सम्बन्धित विषय की जानकारी जुटाई गई है। द्वितीयक आंकड़ा विधि के अन्तर्गत सम्बन्धित विषय पर विद्वान लेखकों द्वारा लिखी गई पुस्तकों, विभिन्न आयोगों के प्रतिवेदनों तथा सरकारी रिपोर्ट्स को आधार बनाकर अध्ययन किया गया हैं।

साहित्यावलोकन

दिनेश मणि ने अपनी रचना 'जलवायु परिवर्तन', 2015 में बताया है कि आज विश्वस्तरीय जलवायु परिवर्तन से सम्पूर्ण विश्व चिंतित है। शहरों के तेज गति से फैलाव से उसका असर और गहरा हो रहा है। जलवायु परिवर्तन से सागर के किनारों पर बसे महानगरों में बाढ़ का खतरा हमेशा बना रहता है। लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक का प्रणयन लोगों को जलवायु परिवर्तन से परिचित करवाने के उद्देश्य को ध्यान में रखकर किया है।

जी0 एल0 शर्मा ने अपनी पुस्तक 'सामाजिक मुद्दे' 2015 के 53 वें अध्याय 'पर्यावरण सम्बन्धी मुद्दे' में बताया है कि भारत एक विकासशील देश है और जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों के प्रति न सिर्फ सचेत है बल्कि सक्रिय भी है। भारत द्वारा इस दिशा में ठोस कदम उठाने की शुरूआत 2008 में तब की गई जब प्रधानमंत्री ने जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्ययोजना की घोषणा की।

माजिद हुसैन ने अपनी रचना 'मानव भूगोल' 2015 लिखने का मुख्य उद्देश्य मानव भूगोल को न केवल सामाजिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करना, वरन् मानवीय समस्याओं की पहचान कर पृथ्वी ग्रह को एक नवीन आकार देने में मनुष्य की भूमिका को प्रतिपादित करना बताया है। इस पुस्तक में मानव भूगोल को एक व्यापक रूप में प्रस्तुत करते हुए इसके सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, क्षेत्रीय, सामाजिक, नगरीय तथा आर्थिक पहलूओं पर भी चर्चा की गई है।

रविन्द्र कुमार ने अपनी रचना 'पर्यावरण प्रदूषणः एक अध्ययन' 2016 में ध्वनि प्रदूषण , जल प्रदूषण तथा वायु प्रदूषण के अतिरिक्त सिगरेट से होने वाले प्रदूषण, आतिशबाज़ी से होने वाले प्रदूषण, नमक द्वारा होने वाले प्रदूषण, प्रकाश यानि रोशनी से होने वाले प्रदूषण, रेडियोएक्टिव पदार्थो से होने वाले प्रदूषण, आर्सेनिक होने वाले प्रदूषण आदि पर वैज्ञानिक जानकारी दी गई हैं

आर.राजगोपालन की रचना 'पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी', 2017 पर्यावरण सम्बन्धी उन सभी गंभीर समस्याओं पर चर्चा करती है जिनका हम आज सामना कर रहे है जैसे तीव्र वृद्धि, पारिस्थितिकी तंत्र पर बढ़ते खतरे, लुप्त होते जंगल तथा जीवों की प्रजातियां, समाप्त होते प्राकृतिक संसाधन, हानिकारक विशाक्त अपशिष्ट और हरित कानून आदि। यह पुस्तक भारत तथा अन्य देशों के 80 से अधिक वास्तविक जीवन पर आधारित अध्ययनों का उपयोग कर विभिन्न समस्या समाधानों तथा सफलता–असफलताओं का चित्रण प्रदर्शित करती है।

अनिरूद्ध प्रसाद ने अपनी पुस्तक 'पर्यावरण एवं पर्यावरणीय संरक्षण विधि की रूपरेखा,' 2018 में पर्यावरण संरक्षण हेतु निर्मित कानूनों की विस्तृत रूप से व्याख्या करते हुए बताया है कि कठोर कानूनों के बावजूद दिन–प्रतिदिन पर्यावरण को नुकसान पहुँचाया जा रहा है। सरकार एवं आम जनता दोनों ही के द्वारा पर्यावरण संरक्षण नियमों का खुला उल्लंघन किया जाता रहा है जिसके कारण आज पर्यावरण प्रदूषण ने विकराल रूप धारण कर लिया है।

पर्यावरण प्रदूषण

प्रकृति में हवा, पानी, मिट्टी, पौधे तथा प्राणी सभी सम्मिलित रूप में पर्यावरण की रचना करते हैं। लेकिन आज मनुष्य ने अपने स्वार्थ के लिए विश्व के जंगल काटे हैं। प्रदूषण फैलाया है और जीवाश्म ईंधनों का अंधाधुंध इस्तेमाल किया है। जाहिर है कि इंसान की इन हरकतों को धरती अब ज्यादा समय तक सहन नहीं कर सकेगी। अगर यह सब ऐसा ही चलता रहा, तो वह दिन दूर नहीं जब ''ग्रीनहाउस प्रभाव'' के कारण बढ़ती हुई गर्मी ध्रुवों की बर्फ को पिघलाकर प्रलय मचा देगी और पृथ्वी का तापमान बढ़ जाएगा। वैज्ञानिकों ने इस बढ़ती गर्मी को 'ग्लोबल वार्मिंग' नाम दिया है। वायु में 78 प्रतिशत नाइट्रोजन, 21 प्रतिशत ऑक्सीजन, 0.9 प्रतिशत

आरगॉन, 0.03 प्रतिशत कार्बन डाइऑक्साइड है। हवा में उपस्थित ऑक्सीजन सभी के लिए आवश्यक है। क्योंकि सभी जीव–जन्तु इसी पर निर्भर हैं। इसलिए ऑक्सीजन को प्राणवायु भी कहा जाता है। श्वसन के लिए सभी प्राणी वायुमंडल से ऑक्सीजन ग्रहण करते हैं और कार्बन डाइऑक्साइड निष्कासित करते हैं। ठीक इसके विपरीत पेड़–पौधे कार्बन डाइऑक्साइड ग्रहण करते हैं और ऑक्सीजन छोड़ते हैं। इससे वायुमंडल में इन दोनों गैसों के बीच संतुलन बना रहता है।

अन्य जीवधारियों की तरह मनुष्य को भी श्वसन के लिए ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है। आदमी प्रतिदिन औसतन 22,000 बार सांस लेता है। इस प्रकार वह 16 किलो वायु ग्रहण करता है। लेकिन सुख–सुविधाओं के लिए मनुष्य वायु की प्राकृतिक, स्वच्छता को निरंतर नष्ट कर रहा है। पर्यावरण की समस्या किसी एक राष्ट्र की समस्या नहीं है बल्कि यह तो सम्पूर्ण विश्व की समस्या है जिसका समाधान संयुक्त प्रयासों से ही सम्भव है। वैसे तो वायु प्रदूषण के नियन्त्रण हेतु कई कानून बनाए गए है। किन्तु केवल कानून बनाने से काम नहीं चलने वाला है।

पृथ्वी पर ग्लोबल वार्मिंग एक बड़ा खतरा

पृथ्वी पर बढ़ता तापमान केवल मानव जाति के लिए ही खतरा नहीं, वरन् जीव–जन्तुओं और वनस्पतियों के लिए भी भयावह खतरा है। पृथ्वी पर विभिन्न प्रकार की फैक्ट्रियों से निकलने वाला धुआँ, वाहनों से निकलने वाला जहरीला धुआँ आदि से वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा बढ़ रही है जो तापमान को बढ़ा रही है। विभिन्न उद्योगों से निकलने वाला तरल पदार्थ जैसा कचरा जो नदियों में छोड़ा जाता है वही कचरा वायु तथा जल के सम्पर्क में आने से जलवायु को प्रदूषित करता है।

यदि स्थल मण्डल और वायुमण्डल सूर्य से सतत् रूप से ऊर्जा लेते है इससे उनका ऊष्मा भण्डार न तो अधिक होता है। और न ही कम। इस कारण पृथ्वी की ऊष्मा में सन्तुलन की स्थिति बनी रहती है, लेकिन वर्तमान युग में तो आधुनिक प्रौद्योगिकी ने सब कुछ बदल दिया हैं खेती, जीवन शैली आदि। क्योंकि इन प्रौद्योगिकी के कारण उत्सर्जित गैसों के कारण पूरा वातावरण दूषित हो रहा है। इस प्रकार पृथ्वी के समस्त वातावरण में इन गैसों की वृद्धि हो रही है। जब पृथ्वी पर तापमान की मात्रा बढ़ जाती है तो उसे ही ग्लोबल वार्मिंग नाम दिया जाता है।

पर्यावरण में मौजूद हरित गृह गैसों का रिसाव

हरित गृह गैसें पृथ्वी से उत्सर्जित ऊष्मा को सोखने के साथ–साथ पृथ्वी से निकले विकिरण को भी वायुमंडल से बाहर जाने से रोकती है। परिणामस्वरूप पृथ्वी का औसत तापमान बढ़ा है। यह बेहद चिंता का विषय है कि पृथ्वी का ताप बढ़ाने के लिए निम्नलिखित गैसें उत्तरदायी हैं–

कार्बन डाइऑक्साइड

ग्रीन हाउस प्रभाव में कार्बन डाइऑक्साइड गैस का अंश लगभग 55 प्रतिशत है और औद्योगिक राष्ट्र लगभग 76 प्रतिशत कार्बन डाईऑक्साइड का उत्सर्जन करते है। जो 33 प्रतिशत जंगलों के कटान के कारण हैं। 1990 में CO_2 की मात्रा 355 पीपीएम थी और यह 1.5 पीपीएम प्रतिवर्ष की दर से बढ़ रही है।

क्लोरोफ्लोरोकार्बन

यह गैस वायुमंडल में ओजोन क्षरण के लिए उत्तरदायी है। रेफ्रिजरेटर और एयर कंडीशनर से क्लोरोफ्लोरोकार्बन गैस निकलती है। इनकी समतापमंडल में ऊष्मा सोखने की क्षमता कार्बन–डाईऑक्साइड की अपेक्षा 1500 से 7000 गुणा अधिक है। तथा CFC की मात्रा 0.00225पीपीएम है और यह प्रतिवर्ष 0.5 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है।

मीथेन

यह वायुमंडल में 18 प्रतिशत ग्रीन हाउस प्रभाव बढ़ाने में सहयोगी है। मीथेन गैस का उत्पादन मुख्यतः जैविक उत्पादों के गलने व सड़ने से होता है। मीथेन CO_2 की अपेक्षा 25 गुणा अधिक हानिकारक है। वायुमंडल में यह 1 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ़ रही है।

नाइट्रस ऑक्साइड

ग्रीन हाउस प्रभाव में इसका योगदान 6 प्रतिशत है। इसका उत्पादन मुख्यत नाइट्रोजन उर्वरकों और जैविक उत्पादों के जलने व सड़ने के दौरान होता है। क्षोभमंडल में यह 140–190 सालों तक बनी रहती है। CO_2 की अपेक्षा यह 230 गुणा प्रभावी है। वायुमंडल में इसकी मात्रा 0.3 पीपीएम है और यह प्रतिवर्ष 0.2 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है।

हरित गृह गैसों के प्रभाव के परिणाम

1. एक अनुमान के अनुसार, यदि हरित गृह प्रभाव की दर यही रही तो वर्ष 2050 तक पृथ्वी का औसत तापमान 1.5^0C–5.5^0C तक बढ़ जाएगा। जिससे भूमंडलीय तापमान में वृद्धि दर बढ़ जाएगी।
2. तापमान की वृद्धि के साथ–साथ महासागरों के जल का आयतन भी बढ़ेगा। हिमशिखरों व ग्लेशियरों पर जमा बर्फ पिघल जाएगी। जिससे महासागरों में जल स्तर बढ़ने की आशंका है।
3. तापमान वृद्धि के कारण वर्षण पर प्रभाव पड़ेगा और साथ ही मलेरिया जैसी बीमारियों के संक्रमण की सम्भावना भी आर्द्रता बढ़ने से श्वास और चर्म रोगों को भी बढ़ावा मिलेगा। जिससे मानव स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ेगा।
4. कृषि की दृष्टि से तापमान वृद्धि के परिणाम क्षेत्र–विशेष पर निर्भर करेंगे। ऊष्ण और शीतोष्ण प्रदेशों में प्रभाव अधिक होगा। लगभग अनुमानित 2^0C तापमान वृद्धि भी फसलों को नुकसान करेगी। मिट्टी की आर्द्रता कम हो जाएगी और वाष्पोत्सर्जन की दर बढ़ने के कारण गेहूँ और मक्का के उत्पादन पर भी प्रभाव पड़ेगा।

पर्वतीय एवं महाद्वीपीय हिमनदों का पिघलना, वैश्विक स्तर पर सागरीय जल का ऊष्मन एवं सागर तल में उभार, परमाफ्रास्ट क्षेत्रों में हिम द्रवण के कारण संकुचन, उष्ण एवं उपोष्ण कटिबन्धीय रोगों का शीतोष्ण

एवं ध्रुवीय क्षेत्रों में प्रसारण, ऋत्विक परिघटनाओं में कालिक स्थानान्तरण एवं वर्षण प्रतिरूप में परिवर्तन, अयनवर्ती क्षेत्रों का ध्रुवों की ओर विस्तार आदि इस तापवृद्धि की पुष्टि भी कर रहे है। यदि बदलाव की यही गति कायम रही, तो ताप वृद्धि से धरती का बर्फीला आवरण तेजी से पिघलेगा। जो अन्ततः पृथ्वी के औसत ताप और समुद्री जल स्तर को बढ़ाने में मदद करेगा। जिससे समायोजन की दोहरी मुश्किलें पैदा होंगी। हिमनदों और बर्फ पट्टियों के पिघलने तथा स्थलीय जल भण्डार में परिवर्तन के साथ समुद्रतल में वृद्धि के लिए सागर के ऊष्मीय फैलाव का सबसे महत्वपूर्ण योगदान होता है। जिससे अनेक गम्भीर पर्यावरणीय समस्याएं पैदा होंगी। आईपीसीसी की सितम्बर 2013 की रिपोर्ट बताती है कि वैश्विक ताप में वृद्धि के कारण 20वीं सदी में औसत समुद्री जल स्तर में वृद्धि 19 सेमी रही है और 21वीं सदी के अंत तक यह 26 से 81 सेमी तक बढ़ सकता है। इससे बहुत से तटीय द्वीप और क्षेत्र डूब जाएंगे। प्रजातियों के प्रवासन, मानव अधिवास, पेयजल आपूर्ति, मत्स्यिकी, कृषि एवं आर्द्र भूमि पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है। दुनिया की करीब आधी आबादी तटीय भागों के 60 किमी के दायरे में निवास करती है और तटीय जल स्तर में वृद्धि से वर्ष 2050 तक करीब 20 करोड़ लोगों को पलायन करना पड़ सकता है।

पर्यावरण संरक्षण हेतु किये गये प्रयास

जलवायु परिवर्तन एवं इसके घातक प्रभावों को रोकने की दिशा में बहस का सिलसिला 5 से 16 जून, 1972 को स्टॉकहोम में आयोजित 'मानवीय पर्यावरण पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन' में ही शुरू हो गया था, लेकिन इस दिशा में किए गए प्रयासों को एक बड़ी सफलता क्योटो प्रोटोकॉल की स्वीकृति से मिली। पृथ्वी को बढ़ते ताप से बचाने के लिए 11 दिसम्बर, 1997 में जापान के क्योटो शहर में ग्रीन हाउस गैसों में कटौती हेतु ग्लोबल वार्मिंग सम्मेलन आयोजित किया गया। राउल प्रस्ट्राडा की अध्यक्षता में सम्पन्न इस सम्मेलन में ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन पर अन्ततः एक समझौते को मंजूरी दी गई। जिसके तहत विभिन्न औद्योगिक राष्ट्रों के लिए उत्सर्जन की अलग–अलग सीमाएं निर्धारित की गई। यह यूएनएफसीसीसी से सम्बद्ध एक अन्तर्राष्ट्रीय समझौता है। यह सदस्य देशों के लिए बाध्यकारी उत्सर्जन कटौती का लक्ष्य निर्धारित करता है। जिसके तहत सन्धि में शामिल विकसित देशों के सामूहिक रूप से ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को वर्ष 1990 के स्तर पर लाने के लिए वर्ष 2008 से 2012 तक 5.2 प्रतिशत कटौती करने का प्रावधान था। इसे लागू करने के लिए सम्मेलन में शामिल 37 विकसित देशों सहित ऐसे 55 देशों द्वारा, जो कि कुल जीएचजी के स्तर का 55 प्रतिशत उत्सर्जन करते हैं, के द्वारा समर्थन को आवश्यक माना गया। जहाँ सम्मेलन के अधिकांष देशों ने इसे मंजूरी प्रदान कर दी। वहीं अमरीका ने इसे स्वीकार करने से मना कर दिया, चूँकि 55 देशों के हस्ताक्षर की शर्त 23 मई, 2004 को पूरी हो गई। लेकिन 55 प्रतिशत जीएचजी उत्सर्जन की शर्त को पूरा कने के लिए अमरीका की पुष्टि आवश्यक थी, क्योंकि वह दुनिया की जीएचजी में यह एक–चौथाई का उत्सर्जक है, लेकिन इसने मार्च 2001 में यह सन्धि मानने से मना कर दिया।

अन्ततः यूरोपीय संघ के प्रयासों से रूस और जापान को इस प्रोटोकॉल की पुष्टि के लिए मनाया गया और रूसी राष्ट्रपति द्वारा 4 नवम्बर, 2004 को इस सन्धि पर हस्ताक्षर करने एवं 18 नवम्बर, 2004 को प्रोटोकॉल की पुष्टि करने के बाद 16 फरवरी, 2005 से प्रोटोकॉल प्रभावी हो गया। आस्ट्रेलिया द्वारा वर्ष 2007 में इस सन्धि पर हस्ताक्षर के बाद अमेरिका एकमात्र औद्योगिक/विकसित देश है जिसने सन्धि पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं। हालांकि वर्ष 2011 में कनाडा ने इस सन्धि से खुद को अलग करते हुए कहा कि इस बाध्यकारी सन्धि के कार्यान्वयन से उसे 14 अरब डॉलर की राशि का कार्बन क्रेडिट विदेशों में खरीदना पड़ता है। जो कि सम्भव नहीं है। फिलहाल इस सन्धि की समय सीमा समाप्त हो चुकी है और इसके सशक्त उत्तराधिकारी की तलाश लम्बे समय से जारी है।

नवम्बर–दिसम्बर 2011 में डरबन में आयोजित 'कॉप–17', 2012 में दोहा में आयोजित 'कॉप–18', 2013 में बारसा में आयोजित 'कॉप–19' सम्मेलन भी उत्सर्जन पर कटौती का बाध्यकारी समझौता करवाने में असफल रहे। विकासशील देश मदद के लिए गिड़गिड़ाते रहे और विकसित देश विकासशील देशों से समान कटौती की माँग पर अडिग रहे। अन्ततः 1 से 14 दिसम्बर, 2014 में लीमा में आयोजित 'कॉप'–20' सम्मेलन में जीएचजी के उत्सर्जन में इतनी कमी करने की बात की गई जितने से वर्तमान विश्व का तापमान केवल 2^0 सेल्सियस तक बढ़े। सम्मेलन के अन्तिम समय में विकसित और विकासशील देशों के बीच बनी सहमति से यह तय हुआ कि सभी देश जीएचजी के उत्सर्जन में कमी लाने के लिए अपनी–अपनी राष्ट्रीय योजना 31 मार्च, 2015 तक प्रस्तुत करेंगे। विलम्ब होने की स्थिति में वे इसे जून 2015 तक भी भेज सकते हैं। यही योजना आगे यूएनएफसीसी के तहत् विश्व के सभी देशों के लिए दिसम्बर 2015 में पेरिस सम्मेलन के दौरान जलवायु परिवर्तन सम्बन्धी वैश्विक समझौते का आधार बनेगा।

लीमा सम्मेलन की सहमति को साकार रूप देने हेतु विश्व के सभी देश अभीष्ट राष्ट्रीय निर्धारित योगदान के तहत् अपना स्वैच्छिक उत्सर्जन लक्ष्य निर्धारित कर रहे हैं और 2 अक्टूबर, 2015 तक भारत सहित 120 देशों ने अपना लक्ष्य घोषित कर दिया है। जिनमें से 28 सदस्यीय यूरोपीय संघ वर्ष 2030 तक वर्ष 1990 के स्तर से कम–से–कम 40 प्रतिशत उत्सर्जन में कटौती करेगा। वही संयुक्त राज्य अमरीका वर्ष 2025 तक वर्ष 2005 के स्तर से 26 से 28 प्रतिशत तक उत्सर्जन में कटौती करेगा। चीन का कटौती प्रस्ताव बताता है कि विकास प्रक्रिया में तमाम समायोजनों के पश्चात् वर्ष 2030 उत्सर्जन की अधिकतम सीमा का वर्ष होगा। उसके पश्चात् उत्सर्जन में कमी होगी।

जलवायु परिवर्तन के लिए जिम्मेदार उत्सर्जकों की कमी हेतु किसी निश्चित समझौते तक पहुँचने और पेरिस सम्मेलन में अपनी वचनबद्धता से दुनिया को अवगत कराने हेतु भारत ने 2 अक्टूबर, 2015 को 'जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन (यूएनएफसीसीसी) के समक्ष अपने 38 पन्नों के जलवायु पहल योजना नाम के आईएनडीसी दस्तावेज को प्रस्तुत करते हुए कहा कि वह वर्ष 2030 तक सकल घरेलू उत्पाद की प्रति इकाई कार्बन उत्सर्जन की तीव्रता को वर्ष 2005 की तुलना में 33 से 35 प्रतिशत तक कम करना सुनिश्चित करेगा और उसे जलवायु पहल योजना के लक्ष्यों को पूरा करने हेतु वर्ष 2013–14 के मूल्यों पर 2.5 खरब डॉलर धनराशि की आवश्यकता होगी। भारत ने वर्ष 2030 तक अपनी 40 प्रतिशत ऊर्जा आवश्यकताओं का गैर–जीवाश्मीय स्रोतों यथा–सौर, पवन, जल, बायोमास एवं परमाणु आदि से प्राप्त करने का वचन दिया है।

30 नवम्बर से 12 दिसम्बर के बीच पेरिस (फ्रांस) में 'कॉप–21 सम्मेलन' हुआ। जिसमें पेरिस समझौते पर हस्ताक्षर हुये। यह समझौता जलवायु परिवर्तन की चुनौती से निपटने और वैश्विक तापमान में बढ़ोत्तरी को 2 डिग्री सेल्सियस के भीतर सीमित रखने तथा 1.5 डिग्री सेल्सियस के आदर्श लक्ष्य को लेकर हुआ है। इस पर 195 देशों ने हस्ताक्षर कर दिये है तथा यह 4 नवम्बर 2016 से प्रभावी हो गया है।

7–18 नवम्बर 2016 में बाब इघली, माराकेश (मोरक्को) में जलवायु परिवर्तन पर सम्मेलन 'कॉप–22' सम्पन्न हुआ। ऐसे ही 6 से 17 नवम्बर 2017 में बोर्न (जर्मनी) में जलवायु परिवर्तन पर सम्मेलन 'कॉप–23' फिजी के प्रधानमंत्री फ्रैंक की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ।

2 दिसम्बर से 14 दिसम्बर 2018 तक काटोवाइस शहर (पोलैंड) में जलवायु परिवर्तन सम्मेलन 'कॉप–24' माइकल कुर्तिका की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में पेरिस समझौते 2015 को 2020 से लागू करने पर सहमति बनी है। किन्तु अभी भी विकसित व विकासशील देशों के बीच कई मुद्दों पर मतभेद दिखे। यद्यपि चीन ने पेरिस समझौते को लागू करने की सहमति जताई है। भारत ने भी 2030 तक 30 से 35 प्रतिशत कम कार्बन उत्सर्जन करने की बात कही है।

पिछले दिनों 40 देशों के 200 से अधिक वैज्ञानिकों द्वारा तैयार जलवायु परिवर्तन पर आईपीसीसी (इंटरगवर्नमेंटल पैनल ऑफ क्लाइमेट चेंज) की ताजा रिपोर्ट कहती है कि अगले 12 वर्षो में (2030 तक) उठाए गए कदम ही यह तय करेंगे कि दुनिया में असामान्य मौसम और आपदाओं से हम बचेंगे या उनके चंगुल में फंसते जांएगे। संसार के देशों के लिए यह बड़ी चिन्ता का विषय है। आईपीसीसी की इस रिपोर्ट को हजार से अधिक विशेषज्ञों ने रिव्यु किया है और इस रिपोर्ट में साफ चेतावनी दी गई है। कि धरती के बढ़ते तापमान को सुरक्षित स्तर तक रोकने के लिए अब ढील देने का वक्त नहीं बचा है।

प्रमुख सुझाव

उपरोक्त विश्लेषण से यह तो सिद्ध होता है कि जलवायु परिवर्तन में सुधार हेतु सरकारी एवं गैर–सरकारी स्तर पर काफी प्रयास किये जा रहे है। इस दिशा में ओर अधिक गति लाने हेतु शोधकर्त्ता द्वारा पर्यावरण संरक्षण हेतु निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये गये है यथा–

1. प्रदूषण नियंत्रण की नई तकनीकों का इस्तेमाल किया जाना चाहिए।
2. जनसंख्या वृद्धि दर पर रोक लगायी जानी चाहिए।
3. वनों की कटाई को रोका जाना चाहिए तथा अधिक से अधिक वृक्षारोपण किया जाना चाहिए।
4. उद्योगों से होने वाले प्रदूषण पर प्रभावी नियंत्रण लगाना चाहिए।
5. सतत् कृषि की तकनीक अपनानी चाहिए।
6. ईंधन की खपत में कमी की जानी चाहिए।
7. ऊर्जा का उपयोग बुद्धिमानी से करना चाहिए।
8. पर्यावरण और विकास में संतुलन बनाना चाहिए।
9. खनिज पदार्थो का अत्यधिक दोहन रोका जाना चाहिए।
10. पर्यावरण के प्रति लोगों में ओर अधिक जागरूकता को बढ़ाया जाए।

निष्कर्ष

पर्यावरण और विकास वे पहलू हैं, जिन्हें हमने आज एक–दूसरे के विरोध में खड़ा कर दिया है यह स्थिति इसलिए आई है क्योंकि जहाँ जीवन हवा, मिट्टी, पानी पर निर्भर है। वही दूसरी तरफ जीवन के लिए न्यूनतम सुविधाओं को जुटाना भी आवश्यक हो गया हैं। जिसका प्रभाव पर्यावरण पर साफ झलक रहा है। हमें पर्यावरण और विकास को ध्यान में रखते हुए ही आगे बढ़ना है। जिस प्रकार हमने उद्योगों को अपनी आर्थिक जरूरत माना है। उसी तरह पर्यावरण की तरफ भी कदम बढ़ाने होंगे। क्योंकि बढ़ते प्रदूषण से मानव स्वास्थ्य विकास को हमने नकारात्मक रूप से प्रभावित किया है। आज पर्यावरण प्रदूषण, प्राकृतिक संसाधनों की गिरती गुणवत्ता तथा साफ–सफाई की कमी और गरीबी में बढ़ोत्तरी हो रही है। इन नुकसानों की कुल सामाजिक व आर्थिक लागत भारत के लिए करीब 3.75 ट्रिलियन रूपए सालाना है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पर्यावरण को हाशिए में रखकर हम विकास के उत्कर्ष को प्राप्त नहीं कर सकते, अपितु पर्यावरण और अर्थव्यवस्था दोनों एक–दूसरे पर अन्योन्याश्रित और एक–दूसरे के लिए आवश्यक है। सुदपयोग की शर्त पर सब्सिडी देनी चाहिए। पर्यावरण हितैशी शहरीकरण और औद्योगिक विकास के साथ पर्यावरण संरक्षण हेतु नियामक उपायों के अतिरिक्त बाजार आधारित धारणाएं अपनाने की भी आवश्यकता है। ताकि पर्यावरणीय ह्रास का बाजार कीमत पर मूल्यांकन किया जा सके। क्योंकि पर्यावरणीय लागतों का मूल्यांकन किए बिना विकास की सततीयता और सम्पोषणीयता को सुनिश्चित कर पाना बहुत मुकिल है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *मणि, दिनेश : जलवायु परिवर्तन, आइसेक्ट पब्लिकेशंस, हजारीबाग, झारखंड, 2015.*
2. *शर्मा, जी.एल., सामाजिक मुद्दे, रावत पब्लिकेशंस, जयपुर, 2015.*
3. *हुसैन, माजिद, मानव भूगोल, रावत पब्लिकेशंस, जयपुर, 2015*
4. *कुमार, रविन्द्र, पर्यावरण प्रदूषण : एक अध्ययन, हिन्द युग्म, नई दिल्ली, 2016*
5. *राजगोपालन, आर., पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2017*
6. *प्रसाद, अनिरूद्ध, पर्यावरण एवं पर्यावरणीय संरक्षण विधि की रूपरेखा, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशंस, 2018.*
7. *मिश्र, अनिल कुमार, मिश्र, सुधीर कुमार; पर्यावरण शब्दकोष, प्रभात प्रकाषन, दिल्ली, 2017*
8. *शर्मा, पी.डी., इकॉलॉजी एण्ड एनवायरमेंट, रस्तोगी पब्लिकेशंस, मेरठ, 2011*